नए मध्य वर्ग में पनपती राजनीतिक अलगाव की भावना
The Political Alienation of India's New Middle Class

पैट्रिक फ़्रेंच
Patrick French
June 6, 2011

एशिया और कदाचित् विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में भारत में सार्वजनिक विरोध की अच्छी-खासी परंपरा है. वस्तुतः ऐसा शायद ही कभी होता होगा कि किसी एक भारतीय शहर से दूसरे शहर में जाते हुए आपको कोई राजनीतिक या सामाजिक प्रदर्शन होता न दिखाई दे. यह प्रदर्शन किसी का भी हो सकता है, वकीलों का, ट्रेड यूनियन वालों का या फिर किसी पार्टी के अभियान का. नई दिल्ली के जंतर मंतर में सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार के विरूद्ध सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हज़ारे और उनके समर्थकों का अप्रैल में किया गया आंदोलन अपने-आपमें विलक्षण था और इसका परिणाम भी बहुत जल्दी निकल आया.

हज़ारे ने सार्वजनिक अनशन करके भारतीय ढंग से विरोध करते हुए न केवल महात्मा गाँधी बल्कि उनके बाद उनका अनुसरण करने वाले अनगिनत लोगों की परंपरा का अनुसरण किया. दबाव डालने के एक उपाय के रूप में यह निश्चय ही प्रभावशाली सिद्ध हुआ. सरकार लोकपाल बिल के रूप में भ्रष्टाचार के विरुद्ध सख्त कानून बनाने पर सहमत हो गई और हज़ारे और उनके नामित प्रतिनिधियों को उसका प्रारूप तैयार के लिए उनकी भागीदारी पर भी सहमत हो गई. जंतर मंतर में लोग भजन गाते रहे और "भारत माता की जय" के नारे लगाते रहे. यदि किसी राजनीतिज्ञ ने वहाँ आकर उसमें भाग लेने की कोशिश की तो उन्हें खदेड़ दिया गया. जल्द ही बॉलीवुड के कलाकार और आदि गोदरेज और राहुल बजाज जैसे समृद्ध व्यापारी और यहाँ तक कि फ़ैडरेशन ऑफ़ इंडियन चैम्बर्स ऑफ़ कॉमर्स ऐंड इंडस्ट्री भी पूरे उत्साह से इसमें भाग लेने लगे. गोदरेज ने कहा ,'कॉर्पोरेट इंडिया आपके उद्देश्य का समर्थन करता है'. हम आपके साथ हैं. टेलीविज़न पर इंटरव्यू देते हुए एक अभिनेत्री ने कहा कि हज़ारे का सरकार के साथ करार होने जा रहा है. 'चार दिन का उपवास वैसे भी शरीर के लिए उपयोगी है.' ऐसा लगा कि वह शायद उपवास को शूटिंग पर जाने से पहले की एक क्रैश डाइट ही मानती हैं.

मध्य पूर्व में विद्रोह के जो स्वर मुखर हुए हैं, उनसे यह तो समझा जा ही सकता था कि कम से कम भारतीय मीडिया तो जंतर मंतर और मिस्र के तहरीर चौक में कुछ समानता तो ज़रूर पाएगा,लेकिन अन्ना हज़ारे को अपने उद्देश्य में जो लोकप्रिय भावुक समर्थन मिला है, उसकी तुलना अमेरिका के टी पार्टी आंदोलन से ही की जा सकती है. यह आंदोलन एक ऐसी भावना से उपजा था जिसमें नियमित मध्यम वर्ग को लगने लगा था कि उसे उसके अधिकारों से वंचित किया जा रहा है और सरकार को मानो उनसे कोई सरोकार ही नहीं है और उनसे कुछ ऐसा छीना जा रहा है, जिसे बयान नहीं किया जा सकता, लेकिन वह उनके लिए बेहद ज़रूरी है. भारत में भी विरोध के पीछे कोई विशिष्ट उद्देश्य या धूमिल मकसद के बजाय भावना ही प्रमुख थी. यही कारण है कि लोगों ने प्रस्तावित लोकपाल बिल से जुड़ी गंभीर समस्याओं को नज़रअंदाज़ कर दिया था. यह भावना एक ऐसी थकी-हारी निराशा और कुंठा से उपजी थी, जिसमें लोग देख रहे थे कि भारत अधिक से अधिक समृद्ध तो होता जा रहा है लेकिन साथ में भ्रष्टाचार भी बढ़ता जा रहा है और वे व्यावसायिक लोग जो अपना विरोध फ़ेसबुक और ट्विटर पर दर्ज करते हैं, सरकार की कार्यप्रणाली से भी अपने-आपको अलग-थलग महसूस करते हैं. दुनिया भर में भारत ही एक ऐसा

देश है, जहाँ मध्यम वर्ग की तादाद सबसे ज़्यादा है, लेकिन नेतृत्व उनके हाथ में नहीं है. यहाँ तक कि फ़िल्मी सितारों और व्यापार की दुनिया के दिग्गजों को भी ऐसा लगता है कि राजनीतिक नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में है जो मानो किसी दूसरे ग्रह के वासी हों और जिनसे उनका संपर्क भी क्षणिक ही हो पाता है.

इसके संरचनात्मक कारण अलग-अलग हैं : राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिज्ञ समृद्ध और सुशिक्षित लगते हैं, लेकिन कुछ राज्यों में तो कई ऐसे भी राजनीतिज्ञ हैं, जिनके खिलाफ़ आपराधिक मामले दर्ज हैं. इसलिए राजनीति में प्रवेश ही उनके लिए सबसे अच्छा उपाय है और कभी-कभी तो उनके बचाव का एक मात्र रास्ता भी यही है. इसका सबसे बड़ा बुनियादी कारण यही है कि संसद या विधान सभा में प्रतिनिधित्व पाने के रास्ते संकीर्ण होते जा रहे हैं. संक्षेप में कहें तो यह बात साफ़ है कि जब तक आपका संबंध किसी प्रतिष्ठित शासक परिवार से नहीं है तो राष्ट्रीय राजनीति में आपके प्रवेश के अवसर तब तक न के बराबर हैं जब तक कि आप भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) या भारतीय साम्यवादी पार्टी (सीपीआई) जैसे किसी वैचारिक दल से जुड़े हुए नहीं हैं, क्योंकि यहाँ पर वंशावली का कोई महत्व नहीं है. पंद्रहवीं लोकसभा के चित्र से पता चलता है कि पचास या उससे कम उम्र के लगभग आधे सांसद अगर चुनाव में किसी सीट पर जीत पाए हैं तो उसका कारण है कि वे राजनीतिज्ञों की संतानें हैं.

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थिति इस संबंध में सबसे अधिक गंभीर है, जहाँ पैंतीस साल से कम हरेक सांसद आनुवंशिक ही है. यदि हम इस सर्वेक्षण का दायरा संपूर्ण लोकसभा तक विस्तृत कर लें तो पाएँगे कि अड़तीस में से तेतीस सांसद किसी खास कुल में जन्म के कारण ही संसद में प्रवेश कर पाए हैं. शेष पाँच सांसदों में से तीन सांसद भाजपा, बसपा और सीपीआई (एम) में रैंक से आगे बढ़ते हुए निश्चय ही अपनी योग्यता के आधार पर आए हैं. एक को तो मायावती ने टिकट दिया था, क्योंकि वह प्रतिष्ठित छात्र नेता होने के साथ-साथ माफ़िया का सदस्य भी था और दूसरे सांसद को काँग्रेस के प्रकट उत्तराधिकारी राहुल गाँधी ने स्वयं चुना था. महिला सांसदों (जिनकी संख्या 108 वें संविधान संशोधन के पारित होने के बाद काफ़ी बढ़ने वाली है, जिसमें महिलाओं के लिए राष्ट्रीय और राज्य स्तर के निकायों में 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित रहेंगी) के आँकड़े तो और भी चौंका देने वाले हैं : 70 प्रतिशत महिलाएँ प्रमुख राजनीतिज्ञों की पत्नियाँ, विधवाएँ या बेटियाँ हैं. कुछ मामलों में तो पारिवारिक संबंध कई अलग-अलग दिशाओं में भी फैल जाते हैं. इनमें सांसदों के संबंध मात्र वंशानुगत ही नहीं, बल्कि अति-वंशानुगत भी हैं. यद्यपि लोकसभा के पिछले वर्षों के उसी प्रकार के आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं,लेकिन उपलब्ध साक्ष्य से यह संकेत मिलता है कि सही सांख्यिकीय आँकड़ों के अभाव में भी समस्या का स्वरूप और भी विकराल होता जा रहा है. सत्तर तक की उम्र के वर्तमान सांसदों में केवल 10 प्रतिशत सांसद ही भाई-भतीजावाद या पारिवारिक संबंधों से लाभान्वित हुए थे, जबकि आज चालीस साल से छोटे दो-तिहाई से अधिक सांसद वंशानुगत हैं.

इस व्यवस्था ने भारत के कितने ही प्रतिभाशाली लोगों को राष्ट्रीय राजनीति से बाहर खदेड़ दिया है.भागीदारी के लोकतंत्र के बजाय,जिसमें चुनाव में लड़ने के लिए व्यक्तिगत योग्यता ही एक मात्र मानदंड होना चाहिए,परिवारवाद ही केंद्रीय बिंदु बनकर रह गया है. जो लोग राजनीतिक स्पैक्ट्रम के मध्य-वाम या मध्य-दक्षिण में हैं और जो साम्यवादियों या भाजपा से कोई संबंध नहीं रखना चाहते, उनके लिए बहुत कम रास्ते खुले हैं और वे कभी-भी राष्ट्रीय स्तर तक नहीं पहुँच सकते. जब उनके लिए कोई सीट ही नहीं बचती तो उनकी महत्वाकांक्षा भी अप्रासंगिक हो जाती है. आंशिक रूप में साफ़ तौर पर यह कुंठा ही है, नपुंसकता की भावना है, क्योंकि राजनीति उन्हें

अधिकाधिक निष्क्रिय ही बनाती जा रही है. यही भावना "भ्रष्टाचार" के खिलाफ़ भीतर ही भीतर पनपते हुए आक्रोश का रूप ले लेती है, लेकिन यह आक्रोश आम तौर पर राजनीतिज्ञों के खिलाफ़ है. यही कारण है कि अन्ना हज़ारे को अप्रत्याशित सफलता मिली है.

पैट्रिक फ्रेंच "इंडियाः एक पोर्ट्रेट" के लेखक हैं, जिसका प्रकाशन जून,2011 में नॉफ़ द्वारा किया जा रहा है. वी.एस. नायपाल पर लिखी उनकी जीवनी " द वर्ड इज़ व्हाट इट इज़" पर उन्हें नेशनल बुक क्रिटिक्स सर्कल पुरस्कार मिला है.15 वीं लोकसभा की निर्मिति पर किए गए उनके अनुसंधान का पूरा डेटासेट http://www.theindiasite.com/family-politics/ पर उपलब्ध है.

हिंदी अनुवादः विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा),रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>